International Journal of Applied Research 2019; 5(2): 284-287

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(2): 284-287
www.allresearchjournal.com
Received: 23-12-2018
Accepted: 27-02-2019

पूनम कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Correspondence Author:
पूनम कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

छठी शताब्दी ई०पू० में व्यापार–वाणिज्यक का परिदृय

पूनम कुमारी

साराश
छठी शताब्दी भारत के इतिहास में एक निर्णायक कालखंड था। भारत में प्रबल नगरीकरण के द्वितीय अध्याय ही शुरुआत इसी काल में हुई। वैदिक काल में जो सभ्यता का प्रखर सूर्योदय हुआ, वह वैदिक धर्म इस समय तक आकर तरह–तरह की व्याधियों एवं पाखंडों से घिर गया। वैदिक धर्म की वर्जनाओं के कारण देश की सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक प्रणाली मानों कुंद सी पड़ गयी थी। लोग साँसत का अनुभव करने लगे थे। ब्राह्मणवाद अपने चरम पर पहुँच चुका था। बन्धन के इस युग में अंदर ही अंदर चुनौती के स्वर उभरने लगे थे एवं पुरोहितों के कारण बोझ से लगनेवाले कर्मकांडों के विरोध में अनेक बौद्धिक–धार्मिक मत एवं मतवाद उभरने लगे थे। वर्द्धमान महावीर एवं गौतम बुद्ध के स्वर इनमें सबसे प्रबल होकर उभरे जिन्होंने वेद की सत्ता को खुली चुनौती देते हुए लोगों के समक्ष एक नवीन धर्म उपस्थित किया। जैन एवं बौद्ध धर्म के मध्यम मार्ग तथा नवीन आर्थिक चिंतन ने लोगों को खासा प्रभावित किया। फलतः वैदिक धर्म के बोझ तले दबे लोगों ने इन दोनों धर्मो को अपनाना शुरू किया एवं नये जोश–खरोस के साथ उद्योग एवं व्यापार में लग गये। इसका परिणाम यह निकला कि उद्योग एवं वाणिज्य–व्यापार ने आशातीत सफलता प्राप्त की। लोगों की आर्थिक समृद्धियाँ बढ़ीं। इस नवीन आर्थिक परिवेश में नगरों की नयी परिभाषा गढ़ी। नगर जो पहले केवल सीमित गतिविधियों ने केन्द्र थे वे अब प्रबल आर्थिक गतिविधियों के भी केन्द्र बन गये। मुख्य नगरों के अगल–बगल व्यवसायियों एवं कारीगरों की उपनगरीय बस्तियाँ बसने लगीं। जो परंपरागत नगर थे उनकी भव्यता में चार चांद लगने लगे।

कूट शब्दः व्यापार–वाणिज्यक, बौद्धिक–धार्मिक मत एवं मतवाद, भारत के इतिहास

प्रस्तावना
छठी शताब्दी में धार्मिक–राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन की जो एक लहर चली उसने जीवन–जगत के हरेक क्षेत्र में नये परिवर्तन का श्री गणेश किया। अगर इस क्रांतिकारी काल में उद्योग–धंधों को एक नया वातावरण मिला एवं उन्होंने आशातीत उन्नति की, ठीक उसी प्रकार वाणिज्य–व्यापार के क्षेत्र में भी नये युग का सूत्रपात हुआ। भौतिक समृद्धि, औद्योगिक प्रगति, विविध प्रकार के शिल्पों का अपरिमित विकास आदि ने न केवल नगरीकरण की प्रक्रिया, ऐश्वर्यमय नागरिक जीवन, शक्तिशाली राज्य व्यवस्था एवं गणतंत्रीकरण के मार्ग प्रशस्त किये बल्कि वाणिज्य एवं व्यापार को भी एक नये युग में प्रवेश कराया। उस समय संपूर्ण उत्तर भारत में यह भौतिकवाद के उफान का दौर था जिसमें वाणिज्य–व्यापार का विस्तार स्वाभाविक था। [1]

इस आलोच्य काल में व्यापारिक वस्तुओं पर लगाये गये कर राजकोषों को समृद्ध बनाने के महत्वपूर्ण साधन बन गये थे। फलतः राज्य भी व्यापारिक कार्यों में रुचि लेने लगे थे। राज्य द्वारा नियुक्त कर्मचारी व्यापारिक वस्तुओं का नियमित निरीक्षण करते थे एवं करों की उगाही करते थे। [2] विनयपिटक को यह जानकारी मिलती है कि करों की वसूली के लिये राज्य की ओर से स्थान–स्थान पर चुंगी घर बनाये गये थे। [3]

उस समय भी व्यापारियों को असामाजिक तत्त्वों एवं वन्य पशुओं का मार्ग में भय बना रहता था। अतः व्यापारी अपने सामानों को अनेक वाहनों या पशुओं पर लादकर सामूहिक रूप से न केवल चलते थे बल्कि अपने साथ भारी संख्या में सहायकों एवं नौकरों को भी लेकर चलते थे। इन व्यापारिक जत्थों एवं समूहों को 'सार्थ' कहा जाता था। इन सार्थों को अपने लक्ष्य स्थल तक पहुँचने के लिये वन्य एवं निर्जन मार्गों से होकर गुजरना पड़ता था। मार्ग में सदैव खतरे का भय बना रहता था। व्यापारियों के दल के प्रधान को श्सार्थवाहश कहा जाता था। [4]

बड़े–बड़े व्यापारियों का व्यापारिक साम्राज्य काफी दूर–दूर तक फैला हुआ था। देश के भीतर एवं बाहर के बाजारों में ऐसे समृद्ध व्यापारियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों पर एक साथ उनका व्यापार चलता था। श्रावस्ती के अनाथिपिण्डिक का व्यापारिक कार्यों के सिलसिले में काशी जाने का उल्लेख बौद्ध ग्रंथों से मिलता है। [5] एक स्थान पर राजगृह से दक्षिण की दिशा में सार्थों के जाने का एक विवरण प्राप्त होता है। [6]

विभिन्न प्रकार की आपदाओं एवं संकटों के कारण कुछ निरापद मार्गों से होकर सार्थ समूह के जाने का एक विवरण भी प्राप्त होता है। [7] जातक कथाओं में ऐसे कई व्यापारिक मार्गों का उल्लेख प्राप्त होता है जिन्हें श्वाणिज पथश या व्यापार मार्ग कहा जाता था। [8] जातक कथाओं में भूतल एवं समुद्र दोनों मार्गों से व्यापार होने का विवरण प्राप्त होता है। व्यापारीगण गांधार के भरुकच्छ से समुद्र का तटीय मार्ग अपना कर बर्मा तक तथा चंपा से बर्मा तक की यात्रा कर व्यापार किया करते थे। [9] एक अन्य जातक कथा में राजस्थान के थार की मरुभूमि में सार्थों की रात्रिकालीन यात्रा का अत्यंत ही रोचक वृत्तांत मिलता है। [10] महावग्ग में तदुस्स तथा भल्लिक नामक दो व्यापारियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो उत्कल या उड़ीसा से आ रहे थे एवं ऊरवेला से गुजर रहे थे।[11] विनय पिटक में उत्तरायण के व्यापारियों का अपने पाँच सौ घोड़ों के साथ वरेज्जा वर्षाकाल व्यतीत करने की चर्चा मिलती है।[12] औषधीय गुणवाले लवणों की चर्चा करते हुए महावग्ग के मेसज्जगंधक में सामुद्द तथा सिंधव शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि इन स्थानों के साथ गंगा घाटी क्षेत्र का निश्चित व्यापारिक सम्बन्ध था।[13] इन विवरणों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि देश के विभिन्न व्यापारिक संस्थान परस्पर राजमार्गों द्वारा जुड़े हुए थे। इस बीच में आनेवादी नदियों में लोग नावों द्वारा पार किया करते थे। कुछ व्यापारी बड़े–बड़े नावों में सामान भरकर नदी मार्ग से ही व्यापार किया करते थे। अंतर्राज्यीय व्यापारिक स्थलों का विकास एवं जल मार्गों का बेखौफ उपयोग इसलिये भी उस काल में संभव हो पा रहा था कि राज्य की ओर से व्यापार एवं व्यापरियों को संरक्षण प्राप्त था। राज्य को व्यापार से आर्थिक लाभ होता था। इससे औद्योगिक प्रगति एवं राज्य की खुशहाली दोनों होती थीं। अतः राज्य व्यापारियों को अपने सुरक्षा के दायित्वों के निर्वहन में पूर्ण सचेष्ट रहता था। राजकीय संरक्षण प्राप्त कर व्यापारी निर्भय होकर अपने माल के साथ विभिन्न पथों से यात्रा करते हुए गंतव्य तक पहुँचते थे।[14] यद्यपि इस समय के व्यापारिक मार्गों की संपूर्ण रूप से पहचान नहीं की जा सकी है तथापि राइस डेविड्स ने उत्तर से दक्षिण–पश्चिम, उत्तर से दक्षिण–पूर्व तथा पूर्व से पश्चिम की ओर जानेवाले व्यापारिक मार्गों एवं इसके बीच में आनेवाले पड़ावों को रेखांकित करने का प्रयास किया है।[15]

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में वाणिज्य–व्यापार की स्थिति के सम्बन्ध में प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में जो जानकारियाँ मिलती हैं उसके आधार पर व्यापारिक गमनागमन को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैदृ

1. समुद्र मार्गीय व्यापार एवं
2. स्थल मार्गीय व्यापार।

1. समुद्र मार्गीय व्यापार– प्राचीन बौद्ध साहित्यों में समुद्र मार्ग से व्यापार के भी अनेक विवरण मिलते हैं। इन विवरणों के अनुसार सामूद्रिक मार्ग से रवाना होनेवाले व्यापारी अपने साथ तट प्रदर्शक पक्षी लेकर साथ चलते थे। समुद्र में पहुँचने पर जब उनकी दृष्टि से धरती ओझल हो जाती थी तब वे तटप्रदर्शक पक्षी को पिंजड़े से निकालकर आजाद कर देते थे। वह पक्षी पहले नाव के चतुर्दिक उड़ान भरता था। इस क्रम में यदि वह पक्षी उड़कर गायब हो जाता था तो फिर समझा जाता था कि कोई तट समीप है और व्यापारी समझ जाता था कि शीघ ही वह अपने गंतव्य स्थान तक पहुँचनेवाला है। लेकिन अगर पंछी लौट कर चला आता था तो इसका अर्थ होता था कि अभी तट नहीं आया है। इस तट अन्वेषक पक्षी को 'संकुर्ण' कहा जाता था। जातकों से इसी के समतुल्य तट अन्वेषण की एक प्रक्रिया को 'दिवाकाक' की संज्ञा दी गयी है। परंतु विशाल समुद्र में जाने पर बहुधा ये तट अन्वेषक पक्षी तट का ज्ञान करा जाने में असफल हो जाते थे। ऐसी स्थिति में व्यापारिक नावों के बीच समुद्र में भटक जाने या फिर उनके डूब जाने की सदैव आशंका बनी रहती थी।[16]

पालि साहित्यों में श्समुद्रश शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है एवं संकुर्ण एवं दिवाकाक जैसे पक्षियों की जो चर्चा मिलती है उससे सामूहिक यात्रा का ही बोध होता है। परंतु पालि साहित्यों में मज्झिन जनपद की जिस भौगोलिक स्थिति का उल्लेख किया गया है उसमें किसी पश्चिमी और पूर्वी बंदरगाह का विवरण नहीं है। स्थल मार्ग की तुलना में सामुद्रिक मार्ग अत्यधिक खतरनाक एवं अनिश्चित माना जाता था। व्यापार को हमेशा इस मार्ग में नुकसान पहुँचने की आशंका बनी रहती थी। अतः पालि साहित्य में मिले विवरणों को नदियों के संदर्भ में भी जोड़कर देखा जा सकता है। बड़ी नदियों से होकर यात्रा करने के क्रम में व्यापारी संकुर्ण एवं दिवाकाक पक्षियों को इस्तेमाल करते होंगे। तथापि उस समय में लाभ कमाने की इच्छा रखनेवाले साहसी व्यापारियों की भी कमी नहीं थी जो समुद्र यात्रा का खतरा मोल लेने में पीछे नहीं हटते थे। कभी–कभी इस उत्साह का दुष्परिणाम की उन्हें भोगना पड़ता था जब समुद्र में उठनेवाले तूफानों के क्रम में माल सहित उनके जहाज एवं वे स्वयं डूब जाया करते थे। [17] पंडारक जातक से यह पता चलता है कि पाँच सौ व्यापारियों का एक सार्थ सामुद्रिक व्यापार के लिये विदा हुआ और जहाज के बीच समुद्र में नष्ट हो जाने के कारण मछलियों का आहार बन गया।[18] बबेरू जातक में भारत और बेबिलोन के बीच व्यापारिक संबंधों का वर्णन है। यद्यपि प्रख्यात इतिहासकार रिचर्ड फिक इस वर्णन पर प्रश्नचिह्न उपस्थित करते हैं। उनके अनुसार यदि भारत एवं बेबिलोन के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ रहता तो जातक का वह बबेरू राष्ट जिसे बेबिलोन से सम्पृक्त किया गया है, वहाँ के निवासियों का रीति–रिवाज और वहाँ के उत्पादित वस्तुओं के सम्बन्ध में निश्चित ही कुछ प्रमाण या साक्ष्य प्राप्त हुए होते। ऐसे में फिक महोदय का अनुमान है कि कुछ भारतीय नाविकों ने बेबीलोन की यात्रा की होगी। वहाँ की रोमांचक यात्रा स्पष्टतः लोगों को चकित करनेवाली रही होंगी उसे उन्होंने आमजनों के बीच परोसा।[19] यद्यपि जातकों में सामुद्रिक व्यापार की विस्तार से चर्चा नहीं मिलती है। तथापि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि श्समुद्द वणिजश का प्रचलन था और इसे व्यापारिक जगत का एक अतिविशिष्ट साधन माना जाता था। पालहंस जातक में उन कुछ दुर्भाग्यशाली व्यापारियों की चर्चा मिलती है जिनके पाँच सौ जहाज सामुद्रिक तूफान में डूब गये एवं वे लोग स्वयं भी काल के ग्रास बन गये। संख जातक में सामुद्रिक व्यापार का एक प्रसंग आया है कि वाराणसी के एक व्यापारी ने अत्यधिक धनोपार्जन की आशा से 'सुवर्णभूमि' की यात्रा की एवं तूफान के कारण उसका जहाज नष्ट हो गया। जातकों में कुछ सामुद्रिक मार्गों का भी स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है जिनसे होकर व्यापारियों का समूह गुजरा करता था। उन मार्गों के नाम निम्नलिखित है [20]–

(क) सुरमाल
(ख) अग्निमाल
(ग) दधि माल
(घ) निलकुसमाल
(ङ) नलमाल एवं
(च) बलगामुख।

जातकों में वर्णित इन मार्गों एवं स्थानों की पहचान इतिहासकारों ने करने का प्रयास किया है। तदनुसार फारस की खाड़ी के कुछ भाग जो संभवतः अरब के दक्षिणी–पश्चिमी भागों को जोड़ता है, अदन के पास स्थित अरेबियन तट एवं सोमाली लैंड के कुछ भाग, लालसागर तथा अफ्रिका के उत्तर–पूर्व में स्थित नूबिया लालसागर को भूमध्य सागर से जोड़नेवाली नहर और भूमध्य सागर का वह भाग जहाँ आज भी ज्वालामुखी सक्रिय हैं आदि स्थानों से की गयी है। [21] तथापि समीकरण का यह प्रयास कितना वैज्ञानिक, कितना सच एवं कितना संतुलित है यह कहना कठिन हो जाता है।

2. स्थलमार्गीय व्यापार– छठी शताब्दी ई. पूर्व में जल मार्ग की अपेक्षा स्थल मार्ग से व्यापार अधिक होता था क्योंकि यह मार्ग अधिक सुरक्षित ओर माकूल था। समकालीन साहित्यों में नगरों को जोड़नेवाले अनेक राजपथों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। व्यापारियों द्वारा बहुत पूर्व से इन मार्गों का उपयोग अपने व्यापार के लिये किया जा रहा था। ये व्यापारिक मार्ग इतने लोकप्रिय और सुरक्षित माने जाते थे कि आमलोग भी इसी होकर यात्रा करते थे। स्वयं बुद्ध एवं उनके शिष्यगण भी इन्हीं प्रचलित व्यापारिक मार्गों से होकर यात्रा किया करते थे। ऐसे ही राजमार्गों से जीवक वैद्य ने बड़ी दीर्घ यात्राएँ की थीं। अपनी शिक्षा के लिये वह तक्षशिला गया। साकेत जाकर उसने वहाँ के सेट्ठि गहपति का उपचार किया था। [22] राजगृह में मगध नरेश बिम्बिसार का आदेश पाकर उसने वाराणसी के सेठ की चिकित्सा के लिये यात्रा की एवं अवंति नरेश चंड प्रद्योत की चिकित्सा के लिये कौशाम्बी होते हुए वह उज्जैनी गया। एक अन्य वर्णन के अनुसार कुछ कार्यवश अनाथपिण्डिक के श्रावस्ती से राजगृह जाने का वर्णन मिलता है। वहाँ उसने अपने एक सम्बन्धी सेट्ठि का आतिथ्य ग्रहण किया था। काशी जनपद में अनाथ–पिण्डिक का सम्मत्त ग्राम था, जहाँ श्रावस्ती से उसकी नियमित यात्राएँ हुआ करती थीं। ऐसे ही एक प्रवास के समय उसने बुद्ध को देखकर उन्हें भोजन के लिये आमंत्रित किया था। उक्कल (उड़ीसा) के दो व्यापारी तपस्सु और मल्लिक जब वाराणसी की यात्रा कर रहे थे तो उन्होंने भी मार्ग में बुद्ध को देखकर उन्हें भोजन के लिये आमंत्रित किया था। [23] बुद्ध स्वयं महान भ्रमणशील थे। भ्रमण के क्रम में वे प्रायः सभी राजमार्गों से परिचित हो चुके थे। श्रावस्ती एवं राजगृह उनकी गतिविधियों के दो प्रमुख केन्द्र थे, जहाँ वे अक्सर जाया करते थे। जिन प्रदेशों, ग्रामों, नगरों अथवा वन प्रांतों से होकर वे गुजरते थे प्रायः उनका उल्लेख जातक ग्रंथों में हुआ है। बुद्ध ने जब पाटलिपुत्र से कुशीनगर के लिये प्रस्थान किया तो वे अम्बलट्ठिका, कोटिग्राम, नाविका, वैसाली, भण्डाग्राम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम, भोगनगर एवं पावापुरी होते हुए कुशीनगर पहुँचे थे। [24]

उस समय व्यापारी गण समूह बनाकर व्यापारिक माल के साथ निकला करते थे। एक विवरण के अनुसार एक हजार गाड़ियों का एक कारवाँ पूर्वी जनपद से पश्चिमी जनपद की यात्रा कर रहा था। यह कारवाँ ऐसे अनेक स्थानों से होकर गुजरा था जहाँ उसे विभिन्न प्रकार की बाधाओं का मुकाबला करना पड़ा था। विवरण में उन स्थानों को भी ग्राम कहकर पुकारा गया है जहाँ वह कारवाँ चार मास से अधिक निवास करता था। वस्तुतः ऐसे पड़ाव वाले स्थलों पर बस्तियों का निर्माण हो जाना कहीं से भी अस्वाभाविक नहीं था। विनय पिटक में 'ययागमनीय मग्ग' को सुरक्षित एवं निरापद मार्ग की संज्ञा दी गयी है। कारवाँ के साथ सुरक्षा प्रहरी भी चला करते थे। व्यापारियों के साथ भिक्षुणियाँ भी निर्भय होकर यात्रा करती थीं। परंतु इन व्यापारिक मार्गों को सदैव सुरक्षित एवं निरापद नहीं माना जा सकता था। विशेषकर एकाकी यात्रा तो कही से भी निरापद नहीं मानी जाती थी। रास्ते में दस्युओं के अतिरिक्त हिंसक वन्य पशुओं का भी भय बना रहता था। अतएव व्यापारियों की सुरक्षा का दायित्व राज्य ने अपने ऊपर ले लिया था। इसके बदले में व्यापारियों को राजा को उसका कर चुकाना पड़ता था। व्यापारी जब एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की यात्रा करते थे तो वे नियमित रूप से वाणिज्यिक कर की अदायगी किया करते थे। वह कर वस्तुतः 'पथकर' था। इसे उगाहने वाले 'कम्मिक' कहे जाते थे। व्यापारियों से कर की वसूली करनेवाले 'कम्मिक' काफी सतर्क एवं कर्मठ होते थे। कर की चोरी कर छुपकर भागनेवाले व्यापारियों का पीछा कर उन्हें वे कर चुकाने के लिये विवश कर देते थे। [25]

व्यापारिक मार्ग में जब व्यापारियों का कारवाँ चलता था उस समय का दृश्य कैसा रहता था इसका अनुमान एक समकालीन विवरण से लगाया जा सकता है। अपनी निरंतर चलनेवाली यात्रा के क्रम में बुद्ध एक बार एक स्थान पर खड़े थे। उसी समय व्यापारिक सामानों से लदी पाँच सौं गाड़ियाँ एक झरने को पार कर रही थीं। बुद्ध को उस समय जोरदार प्यास लगी हुई थी। उन्होंने अपने शिष्य आनन्द से झरने का जल लाने को कहा। इस पर आनन्द ने उन्हें अत्यंत विनीत स्वर में कहा– भगवन्! अभी–अभी पाँच सौ गाड़ियों का काफिला इस झरने को पार करके गया है। गाड़ियों के पहियों के चलने से झरने का जल गंदला हो गया है। समीप ही कथुआ नदी है जिसका जल स्वच्छ शीतल एवं मधुर है। वहीं चलकर भगवन् जल का पान करें। [26]

एक अन्य विवरण से भी समकालीन स्थल मार्गीय व्यापार पर प्रकाश पड़ता है। बुद्ध जब अंधकोविद से राजगृह जा रहे थे तो मार्ग में शर्करा से भरे हुए घड़ों से लदी हुई पाँच सौ गाड़ियों के साथ राजगृह से अंधकोविद की ओर आ रहे बेलट्ठकच्चान नामक प्रतिष्ठित व्यापारी से मिले थे। बेलट्ठ मुख्य रूप से शर्करा का बड़ा व्यापारी था एवं शर्करा के विक्रय के लिये एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की यात्राएँ किया करता था। दूरस्थ प्रदेशों के व्यापारी अपने माल को बेचने के लिये मज्झिम जनपद की यात्रा करते थे। एक विवरण के अनुसार उत्तरपथ के अश्व व्यापारी बेरजुजा नामक स्थान पर अपने पाँच सौ घोड़ों के साथ वर्षावास कर रहे थे। [27] मज्झिम जनपद की सीमा में आर्थिक महत्त्व की अनेक वस्तुओं का उत्पादन होता था। जैसे कि काशी में बने वस्त्र एवं वहाँ के चंदन का निर्यात देश–विदेश हर जगह किया जाता था। कोसल की काँसे की थाली की ख्याति सर्वत्र थी। बुद्ध ने साँप की चमकती आँखों की उपमा कोशल की बनी काँसे की थाली से की है। [28]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जातक ग्रंथों में स्थलमार्ग से होनेवाले व्यापार का विस्तृत विवरण प्राप्त होता रहा चम्पा, मिथिला एवं वाराणसी तीनों घनिष्ठ रूप से आपसी व्यापार से जुड़े हुए थे। पूर्वी भारत में चम्पा एक महान व्यापारिक केन्द्र माना जाता था। चम्पा से ही व्यापारियों का दल सुवर्ण भूमि के लिये प्रस्थान करता था। स्थलमार्ग द्वारा चम्पा मिथिला से जुड़ा हुआ था। गंगा के तट पर अवस्थित वाराणसी तत्कालीन व्यापारिक जगत का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ से प्रत्येक दिशा के लिये व्यापारिक मार्ग निकलते थे। स्थलमार्ग से यह तत्कालीन सभी प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों से जुड़ी हुई थी। वाराणसी के एक व्यापारी जिसका नाम करपट था, उसने मिटी के बरतनों को खच्चरों पर लादकर तक्षशिला के लिये प्रस्थान किया था। विदेह से गांधार के बीच एक मार्ग था। इस मार्ग में स्थल और नदी दोनों पड़ते थे जो वाराणसी होते हुए आगे की ओर जाता था। मिथिला से काम्पिल्य और इससे आओ इन्द्रप्रस्थ तक जाने के लिये इस मार्ग का अनुगमन प्रयाग तक अनिवार्य रूप से करना होता था। पुनः गंगा में नाव से पार करना पड़ता था। मथुरा में खेते हुए मथुरा तक जाया जा सकता था। यहाँ से पश्चिम की यात्रा पुनः स्थल मार्ग से होती थी जो सिन्ध तक चला जाता था। जाहिर है कि इस समय एक जनपद दूसरे जनपद से घनिठ व्यापारिक सम्बन्धों से जुड़े थे। जिस कारण उद्योग एवं व्यापार के विकास में बाधक वैदिक मतों एवं वर्जनाओं का विरोध किया गया। साथ ही नयी उत्पादन तकनीक पर विकसित हो रहे समाज को वैचारिक तथा धार्मिक समर्थन भी दिया गया। इस समय क्षत्रिय गण पुरोहित के विरूद्ध एक नयी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के साथ सचेत हुए। राजा ने कर लेने के एवज में व्यापारियोंय को पूरी सुरक्षा प्रदान की। फलतः यह नवीन आर्थिक वातावरण आर्थिक क्रांति उत्पन्न कर पाने में सफल हुआ।

संदर्भ :

1. पी. वन्दोपाध्याय, इकॉनामिक लाइफ एंड प्रोगेस इन एनसिऐंट इंडिया (पार्ट–1), कलकत्ता, 1945, पृ.– 205
2. वही, पृ.– 205

3. विनय पिटक, सं.– भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा, 1958, पृ. – 219
4. मोतीचन्द्र, सार्थवाद, पटना, 1953, पृ.– 42
5. महावग्ग (देवनागरी संस्करण), नालंदा, 1949, पृ.– 8–9
6. जातक, हिन्दी अनुवादक– भदन्त आनंद कौशल्यायन, प्रयाग, तृतीय खंड, वि.सं.– 2013, पृ0–365
7. वही, पृ.– 188
8. के.वी. रंगास्वामी आयंगर, एनसिऐंट इंडियन इकानॉमिक थॉट, मद्रास, 1956, पृ.– 100
9. वही, पृ.– 103
10. जातक, हिन्दी अनुवादक– भदन्त आनंद कौशल्यायन, प्रयाग, खंड 6, वि.सं.– 2013, पृ0–32–35
11. महावग्ग (देवनागरी संस्करण), नालंदा, 1949, पृ.– 220
12. मोतीचन्द्र, सार्थवाद, पटना, 1953, पृ.– 56
13. के.वी. रंगास्वामी आयंगर, एनसिऐंट इंडियन इकानॉमिक थॉट, मद्रास, 1956, पृ.– 107
14. वही, पृ.– 108
15. राइस डेविड्स एंड टी.डब्लू, बुद्धिस्ट इंडिया, कलकत्ता, 1950, पृ.– 106
16. जातक, हिन्दी अनुवादक– भदन्त आनंद कौशल्यायन, प्रयाग, खंड 6, वि.सं.– 2013, पृ0–267
17. थेरगाथा (देवनागरी संस्करण), नालंदा, 1959, पृ.– 520
18. वही, पृ.– 520
19. रिचर्ड फिक, ए सोशल ऑर्गनाइजेसन इन नॉथ इंडिया इन बुद्धाज टाइम, वाराणसी, 1972, पृ.– 270
20. बी.सी. लाहा, ज्योग्राफी ऑफ अर्ली बुद्धिज्म, लंदन, 1932, पृ. – 242
21. वही, पृ.– 246
22. महावग्ग (देवनागरी संस्करण), नालंदा, 1949, पृ.– 291
23. दीघ निकाय (देवनागरी संस्करण), नालंदा, 1958, द्वितीय खंड, 3/18/59
24. रीतिलाल मेहता, प्री बुद्धिस्ट इंडिया, बंबई, 1939, पृ.– 211
25. दीघ निकाय (देवनागरी संस्करण), नालंदा, 1958, द्वितीय खंड, 3/18/62
26. वही, 3/20/64
27. रीतिलाल मेहता, प्री बुद्धिस्ट इंडिया, बंबई, 1939, पृ.– 207
28. संयुक्त निकाय (देवनागरी संस्करण), नालंदा, 1957, प्रथम खंड, 4/69